International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 20-09-2019; Accepted: 21-10-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 6; November 2019; Page No. 44-48

अमीर खुसरो की भाषाई संरचना

डॉ. मनीष ओझा

Assistant Professor, Department of Hindi, SGND Khalsa College, University Of Delhi, Delhi, India

प्रस्तावना

'शास्त्र' का रास्ता 'लोक' की ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों से होकर जाता है। 'शास्त्र' अपनी शास्त्रीयता और काव्यशास्त्र के नियमों में बँधा हुआ होता है और 'लोक' जन सामान्य के सहज भावाकाश में उन्मुक्त विचरण करता है। लोक-साहित्य मानव की अंतरात्मा को शब्दों द्वारा उजागर करते हुए शास्त्र के नियमों की साफ़-साफ़ अवहेलना करता है। वह शास्त्र के मानकों और बंधनों को तोड़ता है। कभी वह पशुओं के गले में बँधी घंटी के रूप में, तो कभी खेत-खलिहानों में कार्यरत स्त्रियों के कोकिल कंठ से निसृत होता रहता है। कोई भी महान कवि इसी लोक और शास्त्र के बीच का रास्ता अपनाते हुए रचना कर्म करता है। वह दोनों में तादात्म्य स्थापित करता हुआ चलता है। इसीलिए जब भी हम महान रचनाकारों की सूची पर नज़र डालते हैं तो वही कवि दिखते हैं, जिन्होंने इन दोनों से अपना संबंध रखा हो और दोनों के बीच संतुलन बना कर चला हो। ज़ाहिर है कि अपने रचनाकर्म में शास्त्र और लोक का सामंजस्य बैठाकर रचनाओं को साहित्यिक परिवेश के अनुकूल ढालने का कार्य भी कोई ऐसा व्यक्ति ही कर सकता है, जो प्रतिभावान हो तथा इन दोनों पर पकड़ रखता हो। ऐसे प्रतिभावान रचनाकारों में एक नाम है 'अमीर खुसरो'।

'अमीर खुसरो' का समय वह समय था जब दरबारी संस्कृति का बोलबाला था और फ़ारसी भाषा की तूती बोल रही थी। भाषा पर असाधारण अधिकार रखने वाले इस कवि ने उस समय आकार लेती आधुनिक आर्य भाषाओं को तथा लोगों के बीच प्रचलित लोक भाषा 'खड़ी बोली' को अपनी प्रतिभा के आधार पर अपनी लेखनी का माध्यम बनाया और 'लोक' और दरबारी भाषा 'फ़ारसी' की शास्त्रीयता के बीच समन्वय स्थापित करने का कठिन कार्य किया। उन्होंने राजधर्म और लोकधर्म दोनों को अपनाया और मुग़ल शासन आने के बाद की भाषा फ़ारसी और भारत में पहले से प्रयुक्त हो रही हिंदी भाषा को सम्मान दिया।

राजभाषा के साथ लोकभाषा को अपना कर अमीर खुसरो ने यह सिद्ध किया कि किसी भी स्थिति में अपनी भाषा को अनदेखा करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। वह भली-भाँति समझते थे कि राजधर्म के साथ-साथ लोकधर्म को भी लेकर चलना समय की माँग है। अतः उन्होंने अपनी भाषा संरचना को इतना लचीला बनाया कि वह किसी भी रूप में उसका प्रयोग कर सकते थे। यही कारण है कि दरबारी फ़ारसी भाषा को भी उन्होंने जीवंतता प्रदान की, भाषा को किसी भी रूप में बोझिल नहीं होने दिया। अपनी भाषा को दरबारीपन से दूर रखा उसमें कृत्रिमता नहीं आने दी। वह यह जानते थे कि एक रचनाकार अपनी अंतरात्मा की आवाज़ को, अपनी निजी भावनाओं को, सामाजिक स्थितियों को 'अपनी' भाषागत संरचना में ढाल कर कुछ इस तरह से अभिव्यक्ति दे सकता है कि वह सरस, सरल और सम्प्रेषणीय हो जाए। इसलिए फ़ारसी के साथ-साथ जन मानस में प्रवाहित होने वाली खड़ी बोली को उन्होंने चुना। उनकी हिंदी साहित्य की भाषाई संरचना को जब हम देखते हैं तो खड़ी बोली का प्रयोग उनकी मुकरियों, पहेलियों, दोहों जैसी लोक प्रतिष्ठित विधाओं में तो नज़र आता ही है, गीतों में, फ़ारसी की प्रचलित विधा ग़ज़ल में एवं कव्वालियों में भी नज़र आता है।

रचनाकार की भाषा उसकी अनुभूति और चेतनता के आधार पर भी आकार ग्रहण करती है। एक रचनाकार में चयन की भी बारीक़ दृष्टि का होना आवश्यक होता है जिसके आधार पर आवश्यकतानुसार वह अनुभव कर निश्चित कर सके कि अपनी बात रखने के लिए उसे भाषा के किस रूप का चुनाव करना है। खुसरो ने यह भली-भाँति अनुभव कर लिया था कि उनकी किस भाषा का साहित्य समाज के किस वर्ग के लिए है। इसीलिए उन्होंने फ़ारसी को दरबार के लिए चुना और लोक में प्रवाहित बोली का प्रयोग जनसामान्य के लिए लिखी जाने वाली रचनाओं के लिए किया। जब उन्होंने राजदरबार के लिए फ़ारसी में लिखा तो इस भाषा के साहित्य ने उन्हें सर्वोच्च स्थान प्रदान

किया और जब उन्होंने लोक भाषा में रचना की तो लोगों ने उन्हें लोक रचनाकार के रूप में स्थापित किया और अपना कंठहार बनाया । एक ऐसा स्थान दिया जो हर रचनाकार पाना चाहता है ।

एक कवि जनमानस की ज़ुबान पर बैठ जाए इससे बड़ा स्थान किसी भी लेखक को नहीं प्राप्त हो सकता है । उनकी इसी सामंजस्यता के कारण ही आज दोनों भाषाई समाज उन्हें अपना कवि कह कर झूम उठते हैं । यह जो सम्मान खुसरो को प्राप्त हुआ है, किसी भी रचनाकार के लिए इससे आगे बढ़कर संभवतः कुछ और इतना सम्मानजनक नहीं हो सकता है । अपनी भाषाई विविधता, विशिष्टता, संवेदना के कारण उन्होंने दो भाषाओं का समन्वय, लोक और शास्त्र का समन्वय, राग-रागिनियों का समन्वय, भावों का समन्वय, परस्पर विरोधी विचारधारा का समन्वय यानी सामाजिक और भाषाई दोनों ही रूपों में समन्वय किया है तथा भाषा और भावों को वे एक नए मुकाम पर ले गए हैं ।

खुसरोकालीन समाज में अपभ्रंश, राजस्थानी 'डिंगल' तथा पुरानी ब्रजभाषा या पिंगल के साथ-साथ खड़ी बोली में साहित्य रचना की जा रही थी । जब साहित्य की भाषा दरबारी और पांडित्यपूर्ण प्रदर्शन की उच्च भूमि से उतर कर जन सामान्य के बीच में आई तब उसमें एक क्रांतिकारी परिवर्तन दिखाई देने लगा । यह परिवर्तन उस सहजता और सरलता के साथ-साथ गेयता के कारण था जिसके फलस्वरूप उस समय की रचनाएँ आज भी लोगों की ज़ुबान पर बसी हुई हैं । जनमानस ऐसे ही रचनाकारों को अपनी जिव्हा पर बैठाता आया है जो उस जनमानस में रच बस कर उनकी भावनाओं को व्यक्त करता हो । चाहे हम विद्यापति का नाम लें या कबीर, तुलसी, सूर, रहीम, मीरा का या उनसे सैकड़ों वर्ष पूर्व अमीर खुसरो का । यह स्पष्ट दिखता है कि जब भाषा अपनी कृत्रिमता को त्याग कर सहजता का बाना धारण करती है तो उसे जन मानस हृदय से लगाता है । यही भाषा के सहज विकास का स्रोत है ।

अमीर खुसरो ने जनमानस की इस भावना को पढ़ा और अपनी चेतना के धरातल पर उसे निखार कर लोक बोली को अपनी रचना का माध्यम बनाया । आम बोलचाल की भाषा खड़ी बोली को उन्होंने सहज ही ग्रहण किया । यह खुसरो की ही विशिष्टता थी कि उन्होंने एक साथ विविध भाषाओं, विषयों का ज्ञान प्राप्त किया और अपने समय में प्रचलित भाषाओं अपभ्रंश और राजस्थानी की धारा के विपरीत जाकर बोलचाल की भाषा को अपना कर अपनी बात कहने का माध्यम बनाया । वह खड़ी बोली 'हिन्दवी' के कायल थे । उन्होंने अपनी रचनाओं में हिंदी की जी खोलकर तारीफ़ की है । "अपनी 'आशिकह' रचना में कवि ने हिंदी की श्रेष्ठता का गुणगान इस प्रकार किया है – यदि आप इस विषय पर अच्छी तरह विचार करें तो आप हिंदी भाषा को फ़ारसी से किसी भी प्रकार से हीन नहीं पायेंगे । हिंदी अरबी के समान है, क्योंकि इन दोनों में से कोई भी मिश्रित नहीं है । यदि अरबी में व्याकरण और शब्द विन्यास है, तो हिंदी में भी वह एक अक्षर कम नहीं है । यदि आप पूछें कि उसमें काव्यशास्त्र है, तो हिंदी किसी प्रकार भी इस क्षेत्र में कमज़ोर नहीं है । जो व्यक्ति तीनों ही भाषाओं का ज्ञाता है, वह समझ लेगा कि मैं न तो भूल कर रहा हूँ और न मेरी बात अतिशयोक्ति ही है ।"[1] फ़ारसी के सर्वश्रेष्ठ कवि का हिंदी के लिए यह प्रेम उनकी भाषाई उदात्तता की पहचान है

खुसरो में यह चेतना थी कि लोक भाषा में जो रचनाएँ वह कर रहे हैं वह किसके लिए हैं । एक ओर जन सामान्य को उसकी आवश्यकता थी और दूसरी ओर कहीं न कहीं दरबार के उस बोझिलतापूर्ण वातावरण से उनकी स्वयं की मुक्ति का भी यह मार्ग था । लोक में व्याप्त सरलता और सहजता को चीन्ह कर उसमें मानस की शांति का अनुभव कर उन्होंने उसी सहजता को ही लोक की भाषा के माध्यम से साहित्य में शामिल करना उपयुक्त समझा ताकि एक पंथ दो काज हो सकें । जनसामान्य के जीवन में हँसी व अमन के दो पल आ सकें तथा वह अपने को पूर्णतः उपेक्षित न समझें और साथ ही उनके हृदय को एक जागृत और संवेदनशील कवि के रूप में संतुष्टि का अनुभव हो ।

लोगों को यह बात नकारात्मक लगती है कि आचार्य शुक्ल ने उन्हें 'फुटकल रचनाओं' में रखा है और इस बात से वह खुसरो की रचनाओं व स्वयं खुसरो को भी कम आँकने लगते हैं । किन्तु यह खुसरो की विशेषता थी जिसके कारण उन चारण कवियों की जमात में आचार्य शुक्ल उन्हें नहीं रख पाए और लोकमानस की छवि के साथ 'लोक कवि' के रूप में पृथक स्थान प्रदान किया । इसका मूल कारण अमीर खुसरो की भाषा थी जो आदिकालीन सभी कवियों से अलग, दरबारी बोझिलता से मुक्त, राजाओं की झूठी प्रशंसा से विमुख थी तथा जो लोकभूमि से जुड़ी हुई थी । इस बात को आचार्य शुक्ल भी स्वीकार करते हैं और उनकी भाषा के सन्दर्भ में लिखते हैं कि "...पर साथ यह भी निश्चित है कि उसका ढाँचा कवियों और चरणों द्वारा व्यवहृत प्राकृत की रूढ़ियों से जकड़ी काव्यभाषा से भिन्न था ।"[2] शुक्ल जी ने खुसरो की भाषाई संरचना या ढाँचे को अन्य समकालीन और पूर्ववर्ती कवियों से अलग स्वच्छंद काव्यभाषा माना, जिसमें रूढ़ियों की जकड़न नहीं थी और हिंदी की बोलियों में वह स्वच्छंदता और सहजता से विचरण करते थे ।

खुसरो की रचनाओं की भाषा, उसमें आने वाले शब्द चाहे वह खड़ी बोली के हों या ब्रज, अवधी के हों, वे सभी ग्रामीण शब्द थे जो गाँव-गाँव में रहने वाले असंख्य लोगों की ज़ुबान पर थे। उन्होंने भारतीय ग्रामीण संस्कृति को उनकी भाषाई प्रयुक्तियों को बहुत क़रीब से देखा। उनके यहाँ किसान, मज़दूर, कहार, पनिहारिन, नाई, दरजी, बुनकर आदि समाज के सभी वर्ग और उनके व्यवसाय से समबन्धित शब्द सहज ही आ गए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि खुसरो ग्रामीण लोगों की बतकही में शिद्दत से सम्मिलित होते थे। इसीलिए तत्कालीन लोक समाज में प्रचलित हिंदी की खड़ी बोली के रूप को आत्मसात कर उन्होंने अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया।

हिंदी साहित्य के इतिहास में वे ऐसे पहले कवि हैं जिन्होंने भाषाई भेद को मिटा कर दोनों ही रूपों को एक करने का सफल प्रयास किया है। इसका उदाहरण इस गीत के रूप में देखा जा सकता है :-

अम्मा मोरे बाबा को भेजो री
की सावन आया
बेटी तेरा बाबा तो बूढ़ा री
की सावन आया
अम्मा मोरे भाई को भेजो री
की सावन आया
बेटी तेरा भाई तो बाला री
की सावन आया
अम्मा मोरे मामूं को भेजो री
की सावन आया
बेटी तेरा मामूं तो बांका री
की सावन आया ।।"[3]

इस गीत की भाषा संरचना शुद्ध व्याकरणिक ढाँचे में ढली हुई है किन्तु 'अम्मा', 'बाबा' भेजो के बाद 'री' का प्रयोग, 'मामूं' आदि शब्द वह हैं जिनका प्रचलन लोक में होता है। यह गीत इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने साहित्यिक ढाँचे का खयाल रखते हुए भी 'लोक' में प्रयुक्त भाषा की वास्तविकता से मुँह नहीं मोड़ा। उन्होंने अपनी भाषा और शैली को इतना लचीला बनाया है कि वह उनके अनुभव के साँचे में सहजता से ढल जाए। वह अपने आस-पास के सुने हुए शब्दों को रचनाओं में ढालना ब-खू-बी जानते थे। ग्रामीण लोकजीवन से घनिष्ठता के कारण उनकी रचनाओं में ठेठ जनपदीय शब्दों का प्रयोग दिखाई देता है।

अवध क्षेत्र में कुछ समय जीवन व्यतीत करने के कारण, वहाँ की लोक भाषा, सामाजिक विविधता को नज़दीक से जानने के कारण उनका संबंध वहाँ की भाषा अवधी से बना। उन्होंने जहाँ अपनी पहेलियों, मुकरियों, दोहों में खड़ी बोली का प्रयोग किया है वहीं गीतों, कव्वालियों, ग़ज़लों में ब्रज और अवधी के शब्दों को भी स्थान दिया है। ब्रज और अवधी की गेयता को खुसरो ने जान लिया था इसलिए गीतों के लिए उन्होंने इन बोलियों को चुना। यह उनकी सूक्ष्म दृष्टि और सामाजिक चेतना को दर्शाता है। उनकी एक सुप्रचलित क़व्वाली का उदाहरण यहाँ देखा जा सकता है जिसमें अवधी शब्दों का प्रचुर प्रयोग दिखाई देता है :

"छापा- तिलक तज दीन्हीं रे, तो से नैना मिला के।
प्रेम बटी का मदवा पिलाके
मतवारी कर दीन्हीं रे, मो से नैना मिला के।
'खुसरो' निज़ाम पै बलि-बलि जइए,
मोहे सुहागन कीन्ही रे, मोसे नैना मिला के।"[4]

अमीर खुसरो की भाषा संरचना को देखते हुए हम समझ सकते हैं कि उन्होंने लोगों की आम ज़िन्दगी से शब्दों को चुना है। वे लोगों के बीच रहकर अपने नए-नए शब्दों का संग्रह सहज रूप से ही करते जा रहे थे। ग्रामीण जनजीवन ही वह स्रोत था जहाँ से वह अपने लिए शब्दों को गढ़ते थे। यह साधारण जनजीवन ही वह वास्तविक कारखाने थे जहाँ से खुसरो को शब्द प्राप्त होते थे। उन्होंने बुनकर की भाँति जनसामान्य के बीच घूम-घूमकर अपने लिए शब्दों के ताने बुने थे। उन्होंने यह कभी नहीं चाहा कि जो रचना वह लिख रहे हैं वह कुछ लोगों तक ही सीमित रहे। अपनी भाषा को उन्होंने इतना सरल और लचीला बनाया कि उसमें मृदुल भावों को आसानी से छंदबद्ध किया जा सकता था तथा एक अशिक्षित व्यक्ति भी उनकी रचनाओं को जीभ पर रखकर अकड़न महसूस नहीं करता था। उन्होंने उसे छंदों व लय में बाँधकर सजाया और सँवारा। यही कारण है कि उन्होंने अपने रचनाकर्म को दोनों ही वर्गों के लिए अलग-अलग रखा।

खुसरो इस बात में भी विशिष्ट हैं कि उन्होंने अपनी सभी रचनाओं को किसी एक ही बोली या भाषा तक सीमित नहीं रखा अपितु उन्होंने यह ध्यान रखा कि जिस समाज में वह रह रहे हैं उस ग्रामीण जीवन

में हिंदी के साथ अरबी-फ़ारसी बोलने वाले लोग भी हैं । इसलिए उन्होंने शब्दों की प्रयुक्ति उसी अनुपात से की जिस अनुपात में समाज में उसका प्रयोग होता था । भाषाई रूप के प्रति खुसरो का यह समर्पण उन्हें अन्य कवियों से अलग करता है । आज जब साहित्यकार अपनी एक भाषा, एक बोली तक ही खुद को सीमित रखता है तो उसका कारण यह है कि वह अपने ख़ास पाठक वर्ग के लिए ही रचना करता है । वहीं दूसरी ओर हम खुसरो को देखते हैं जिन्होंने आज से सात सौ वर्ष पहले भाषाई बन्धनों को तोड़ा और समभाव रखते हुए सभी तक अपनी पहुँच बनाई ।

जिस युग में फ़ारसी अरबी भाषा का बोलबाला था, जो राजकाज की भाषा थी तथा उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करती थी, उस युग में खड़ी बोली हिंदी जैसी लोक में अप्रचलित बोली को अपनी रचना का माध्यम बनाना और उसे बोलचाल से उठा कर साहित्य की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना स्वयं में हिम्मत का काम था । खुसरो ने इस कार्य को जो अंजाम दिया वह काबिल-ए-तारीफ़ कहा जा सकता है । यह कार्य वही व्यक्ति कर सकता था जो स्वयं पर किसी विचार को थोपता नहीं है । यह अपनी भाषा के प्रति उनका प्यार ही था जिस कारण उन्होंने 'क्लासिक' भाषा के रूप में स्थापित फ़ारसी के समक्ष जन-बोली को रखा और दोनों को एक सूत्र में पिरोने का कार्य भी किया ।

वैसे तो अमीर खुसरो ने हिंदी, अरबी, फ़ारसी में अनेक रचनाएँ की हैं जो उन्हें एक श्रेष्ठ रचनाकार की पंक्ति में खड़ा करती हैं किन्तु हिंदी अरबी-फ़ारसी के जानकार होने के नाते उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र में नए प्रयोग किए जो उन्हें भाषाई आधार पर सर्वश्रेष्ठ बनाते हैं । कोई भी रचनाकार एक भाषा के छंद में उसी भाषा का प्रयोग करते हुए लेखन कार्य करता है । यह हम समझ सकते हैं कि अपने ढाँचे विशेष में ढली दो पूर्णतः पृथक भाषाओं का मिश्रण कितना श्रमसाध्य और कठिन कार्य हो सकता है । फिर भी अपने भाषाई ज्ञान की बदौलत खुसरो ने हिंदी और फ़ारसी जैसी पूर्णतः अलग भाषाओं को इस प्रकार संजोया कि वे एकरूप लगने लगीं । एक ही छंद एवं एक ही लयात्मक ढाँचे में दो विभिन्न भाषाओं के बीच समन्वय स्थापित करने जैसा कठिन कार्य करके उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है । उदाहरण देखिए :

"जे हाल-ए-मिसकीं मकुन तगाफुल, दुराय नैनां बनाए बतियाँ
कि ताब-ए-हिजराँ न दारम ऐ जाँ न लेहु काहे लगाय छतियाँ ।।
शबान हिजराँ न दारज़ चूँ जुल्फ़ व रोजे वसलत चू उम्र कोताह ।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ ।।
यकायक अज दिल दो चश्मे-जादू बसद फ़रेबम बबुर्द तसकी ।
किसे पड़ी है जो जा सुनावे पिआरे पी को हमारी बतियाँ ।।"[5]

भाषाविद् के रूप में जो कार्य अमीर खुसरो ने खालिकबारी में किया है वह उन्हें किसी भी पंक्ति में अग्रणीय व्यक्ति के रूप में ला खड़ा करता है । एक व्यक्ति में अलग-अलग भाषाओं की जानकारी का होना उसके भाषाई ज्ञान के साथ-साथ भाषा के प्रति उदारता को भी दिखाता है । यह ग्रंथ एक शब्दकोष है जिसमें अरबी, फ़ारसी, हिन्दवी एवं तुर्की भाषा के समानार्थी शब्द लयात्मकता के साथ इस तरह से पिरोए गए हैं जिससे कि कोई भी व्यक्ति आसानी से तथा रूचिकर रूप से ज्ञानार्जन कर सकता है । भाषा की संरचना की बात करें तो खुसरो ने इस ग्रंथ में भाषा की त्रिवेणी बहाई है । इस ग्रंथ के संबंध में रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं कि "हिन्दुओं को मुसलमानों की भाषा से और मुसलमानों को हिन्दुओं की भाषा से परिचित कराने का खुसरो ने यह सबसे पहला प्रयत्न किया था ।"[6]

कवि अमीर खुसरो के साहित्य और उनकी हिंदी रचनाओं का अवलोकन करने पर यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि खुसरो बहुज्ञ व बहुभाषी कवि और रचनाकार थे । उनका साहित्य उनकी ख़ास क़िस्म की भाषाई संरचना की विशिष्टता और विशेषज्ञता का प्रमाण है । फ़ारसी, अरबी भाषा, ब्रज, अवधी तथा खड़ी बोली पर उनकी पकड़ के कारण भाषा उनकी अपनी अनुगामिनी सी हो गई लगती है । वह उसे जैसे रूप में ढालना चाहते हैं, भाषा उसी रूप में ढलती चली जाती है । जब वह दरबार में बैठकर दरबारी भाषा फ़ारसी में लिखते हैं तो कोई भी यह नहीं कह सकता कि यह वही कवि है जो मधुर, संगीतमय और लोकरस से सराबोर गीतों की रचना करता है । एक ओर दरबारी परिवेश और आवश्यकता के प्रभावस्वरूप वह पांडित्य और शास्त्रीयता के बंधन में बंध कर रचना करते हैं और दूसरी ओर अपने मन की सहज अनुभूतियों को, अपनी रागात्मकता को रूप देने के लिए उस भाषा को चुनते हैं जो 'लोक' की भाषा है । पूरी की पूरी ग्रामीण संस्कृति उनकी भाषा के सहज और लोक रूप में झंकृत हो उठती है । उनकी इस वृत्ति के पार्श्व में रचनाकार की वह ख़ासियत काम करती है जिसके कारण वह अपने परिवेश और वातावरण को पूर्णतः समझकर उसे अभिव्यक्ति देता है । यही 'रचनाकार' खुसरो की विशिष्टता है जो उनकी भाषाई संरचना को और भी विशिष्ट बना देता है ।

संदर्भ सूची

1. अमीर खुसरो : भावात्मक एकता के मसीहा, मलिक मोहम्मद, पृष्ठ संख्या – 48
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या – 30
3. खुसरो की हिंदी कविता, ब्रजरत्न दास, पृष्ठ संख्या – 53
4. भोलानाथ तिवारी, अमीर खुसरो और उनका हिंदी साहित्य, पृष्ठ संख्या – 126
5. खुसरो की हिंदी कविता, ब्रजरत्न दास, पृष्ठ संख्या – 53
6. अमीर खुसरो: भावात्मक एकता के मसीहा, मलिक मोहम्मद, पृष्ठ संख्या – 55 से उद्धृत